Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

इतिहास और पर्यटन

डॉ0 अभिजात ओझा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
नेहरु ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 3 Issue 3
Page Number : 112-126
Publication Issue :
May-June-2020
Article History
Accepted : 20 June 2020
Published : 30 June 2020

सारांश – इतिहास का प्रमुख स्थान है हम अपने तीर्थों, ऋषि मनीषियों, महात्माओं जैसे बुद्ध, महावीर, गुरूनानक की दी हुई धरोहर और इतिहास पर गर्व कर सकते है, आज ये पर्यटन का अहम हिस्सा है शायद इनके बिना पर्यटन सम्भव ही नहीं है या अधूरा सा है।

मुख्य शब्द – इतिहास, पर्यटन, महात्मा, मानव, जीवन, प्रागैतिहासिककाल, पुरापाषाणकाल, मध्यपाषाणकाल, नवपाषाणकाल।

मानव पृथ्वी का निवासी है और हमारी पृथ्वी का इतिहास 4.6 अरब वर्ष पुराना है। यहीं से हमारे जीवन का हर पक्ष, हर पहलू और इतिहास का भी श्री गणेश होता है। 4 अरब वर्ष पहले पृथ्वी एक गर्म गैस का गोला थी। यह गैसें धीरे–धीरे ठंडी हुईं और जमकर ठोस हो गईं। पृथ्वी पर मानव का आगमन 14 लाख वर्ष पूर्व प्लाएस्टोसीन काल में हुआ। यहीं से मानव ने अपनी सभ्यता की दौड़ शुरू की, मानव बन्दर से विकसित होकर प्रज्ञा मानव बना। मानव के प्रागैतिहासिक काल, पुरापाषाणकाल, मध्यपाषाण काल और नवपाषाण काल से गुजरता हुआ नदियों के किनारे विभिन्न सभ्यताओं का निर्माता बना। वह चाहे मेसोपोटामिया की सभ्यता हो, ह्वांगहो की सभ्यता हो अथवा सिन्धु की सभ्यता हो। मानव के सभ्य होने के इतिहास में ही पर्यटन के विकसित स्वरूप का इतिहास दिखाई पड़ता है। यह अपने प्राचीनतम स्वरूप में तीर्थाटन या देशाटन के रूप में जाना जाता था। हमारा इतिहास पर्यटन से किस सीमा तक अभिन्न है या जुड़ा है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पुरास्थल आज पर्यटन के प्रमुख स्थल बन चुके हैं। सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित स्थल हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तो आज पाकिस्तान में हैं किन्तु बणावली, आलमगीरपुर, सुरकोटडा, कालीबंगा, लोथल, धौलाबीरा, देसलपुर अब भी भारत में है जहाँ मानव के प्रारंभिक जीवन के साक्ष्य मिलते हैं। ये सभी स्थल आज पुरातात्विक पर्यटन के अन्तर्गत आते हैं।

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

पुरातत्व के विषय में विचार करते समय सबसे पहले इसकी परिभाषा के विषय में विचार करना आवश्यक है। हिन्दी भाषा का पुरातत्व शब्द अंग्रेजी भाषा के आर्कियोलॉजी (Archaeology) शब्द के पर्यायवाची के रूप में व्यवहृत होता है। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट करना बहुत आवश्यक हो जाता है पुरातत्त्व से क्या आशय है ? हिन्दी के इस पुरातत्व शब्द का वास्तविक अर्थ ज्ञात करने के लिए अंग्रेजी में इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विचार कर लेना असंगत नहीं होगा। लेकिन आजकल पुरातत्व शब्द का उसके शाब्दिक अर्थ से किंचित भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। पुरातत्त्व को पर्याप्त संरक्षण, बढ़ावा दिये जाने के अतिरिक्त इसके प्रति लोगों में जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है जिससे हम अपनी बहुमूल्य विरासत को हानि पहुंचाने से बच सकें।

यूनान और रोम के अतीत की खोज के साथ पाश्चात्य जगत में पुरातत्व का विकास हुआ। पुनर्जागरण काल में यूरोप के विभिन्न देशों के जनमानस में प्राचीन यूनान और राम की क्लासिकल कृतियों, पुरावशेषों के अध्ययन तथा खोज की एक सहज जिज्ञासा एवं इच्छा उत्पन्न हुई। राष्ट्रीय भावना ने अहुति में घी का काम किया। परिणामस्वरूप देखते ही देखते प्राचीन यूनान और रोम की आकर्षक, दर्शनीय कलाकृतियों एवं बहुमूल्य पुरानिधियाँ यूरोप के विभिन्न देशों के संग्रहालयों की शोभा बढ़ाने लगीं। वस्तुतः संग्रहालयों के पुरावशेषों को सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध ढंग से सजाने–सवाँरने की प्रक्रिया से ही यूरोप में पुरातत्व का उद्‌भव एवं विकास हुआ। आज पुरातत्व से सम्बंधित शोधार्थी और विद्वान इन पुरास्थलों को देखने जाते हैं तथा यहाँ से प्राप्त सिक्के, मृण मूर्तियाँ पाषाण, औजार, मानव कंकाल तथा अन्यनान्य साक्ष्यों को संग्रहालयों में ही देखने जाते हैं जिससे सरकार को बड़ी आमदनी होती है जो Educational Tourism या Archaeological Tourism का हिस्सा या रूप है। जब बात नदी घाटी सभ्यताओं की हो रही है तो संसार की प्राचीनतम नदी घाटी सभ्यताओं में से एक सिन्धु घाटी की बात भी जरूर होनी चाहिए। तिब्बत के पठार में स्थित मानसरोवर झील से शुरू होकर यह नदी भारत के जम्मू कश्मीर राज्य के लद्‌दाख से होती हुई गिलगिट फिर बाल्टिस्तान होते हुए सीधे पाकिस्तान के लरकाना जिला यानी प्राचीन मोहन जोदड़ो से होती हुई 3,610 किलोमीटर का सफर तय कर अरब सागर में जा गिरती है। हमारे देश में आज भी लद्‌दाख में सिन्धु नदी के किनारे सिन्धु दर्शन उत्सव मेले का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता है जो इसे पर्यटन से जोड़ता है। इस दिन इस क्षेत्र में विभिन्न पर्यटन गतिविधियों का आयोजन होता है।

यदि हम इतिहास और पर्यटन के सम्बन्धों का सूक्ष्म अवलोकन करे तो पायेंगे की दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। पर्यटकों के लिए बहुत कुछ ऐसा भी है जो दर्शनीय तो है ही साथ ही प्राचीन है ऐतिहासिक महत्व का है कला की दृष्टि से, स्थापत्य की दृष्टि से गौरवपूर्ण आश्चर्य भी है।

इतिहास को खंगाला जाय तो बहुत कुछ ऐसा मिलेगा जो हमें आश्चर्य से भर देगा या चकित कर देगा। इतिहास को हमने अपनी सुविधा के लिए कई कालों में वाट दिया है। उदाहरण के लिए जब हम भीम बैठका की गुफाओं में उस काल के मानव द्वारा की गई चित्रकारी को देखते हैं तो हम

उसको प्रागैतिहासिक काल का कहते हैं। यदि हमें कोई इमारत, मूर्ति, शिलालेख या स्तूप 322 ई0पू0 से 261 ई0पूर्व का मिलता है तो हम कह सकते हैं कि यह मौर्य युग है यहाँ तक तो इतिहास में सब कुछ ठीक है किन्तु इतिहास का प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजन पर विद्वानएक मत नहीं है। पर्यटन की दृष्टि से देखें तो भारत सरकार का पर्यटन मंत्रालय मानता है कि कोई भी इमारत वर्ष 1950 के पहले की है तो धरोहर इमारत मानी जाएगी जिसमें पर्यटन व्यवसाय करने वाले को छूट भी दी जाएगी। आज पुराने किलों में पंचसितारा आलीशान होटल चलाए जा रहे है जिनसे भारत सरकार को अच्छा कर प्राप्त होता है। इतिहास के किसी भी कालक्रम में बनी इमारत पर्यटन और पर्यटकों के लिए ऐतिहासिक है, चाहे वो मौर्य युग में बना सारनाथ का धमेख स्तूप हो या सल्तनत काल में बना कुतुबमीनार मध्यकाल में बना ताजमहल, आगरा का किला, दिल्ली का लाल किला, या आधुनिक युग में अंग्रेजों द्वारा बनवाया गया इण्डिया गेट, तत्कालीन बंबई का शिवाजी टर्मिनल ये सब इमारते हमारी स्थापत्य कला के उदाहरण है। हमारा देश ऐसी उत्कृष्ट स्थापत्य वाली भवनों, किलों, महलों, मन्दिरों से भरा पड़ा है।

मंदिरों की बात करे तो मंदिरों का निर्माण गुप्त काल में विधिवत होने लगा था। हमारे यहाँ तीन शैलियों के मंदिर पाए जाते है। उत्तर भारत में नागर शैली तथा दक्षिण भारत में द्राविण शैली के मंदिर पाए जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर विभिन्न अंगों से मिलकर बना होता है, उसी प्रकार मंदिर के भी विभिन्न अंग होते जिनसे मिलकर मंदिर बनता है। ये 8 अंग निम्न है[1]–

1. आधार या चौकी (इसका एक अन्य नाम जगती पीठ भी है)।
2. वेदिबन्ध (आधार के ऊपर का गोल अथवा चौकोर अंग)।
3. अन्तर पत्र (वेदिबन्ध के ऊपर की कल्पबल्ली या पत्रावली या पत्रावली पट्टिका)।
4. जंघा (मंदिर का मध्यवर्ती धारणास्थल)।
5. वरंडिका (ऊपर का बरामदा)।
6. शुकनासिका (मन्दिर के ऊपर का बाहर निकला हुआ भाग)।
7. कण्ठ या ग्रीवा (शिखर के ठीक नीचे का भाग)।
8. शिखर (शीर्ष भाग जिस पर खरबुजिया आकार का आमलक होता था)।

मन्दिर निर्माण के उपर्युक्त आठ अंग संपूर्ण देश में प्रचलित हो गये। प्रवेश–द्वार (तोरण) को कई शाखाओं में विभाजित करने तथा उसे विविध प्रकार के अलंकरणों से सजाने की परम्परा चल पड़ी।

सातवीं ंशताब्दी से सम्पूर्ण भारत में स्थापत्य कला में क्षेत्रीयता का एक नया आयाम आया तथा उत्तर, मध्य और दक्षिण की कलाकृतियाँ अपनी निजी विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गयीं। अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों– मानसोल्लास मानसार, समरांगणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, शिल्पप्रकाश, सप्रभेदागम्,

कामिनिकागम् आदि की रचना हुई तथा इनमें मन्दिरवास्तु के मानक निर्धारित किये गये। इनके अनुपालन में कलाकारों ने अपनी कृतियाँ प्रस्तुत की। शिल्पग्रन्थों में मंदिर के स्थापत्य में तीन प्रकार के शिखरों का वर्णन है।

1. नागर शैली
2. द्राविड़ शैली
3. वेसर शैली

भौगोलिक दृष्टि से ये शैलियाँ विभिन्न क्षेत्रों में बंटी है। नागर शैली उत्तर भारत की शैली थी जिसका विस्तार हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक दिखाई पड़ता है। द्रविड़ शैली का प्रयोग कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक मिलता है। विन्ध्य तथा कृष्णा नदी के बीच के क्षेत्र में वेसर शैली प्रचलित हुई। चूँकि इस क्षेत्र में चालुक्यों का अधिपत्य रहा है अतः इस शैली को चालुक्य शैली भी कहा जाता है।

नागर शैली का विकास अधिकतम निखरे रूप में उड़ीसा के मन्दिरों में सामने आता है। यहाँ आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक कई मन्दिरों का निर्माण हुआ। यहाँ के कलात्मक रूप से उत्कृष्ट मंदिर इसलिए सुरक्षित हैं क्योंकि यह स्थान पहाड़ियों से घिरा होने के कारण शत्रुओं से सुरक्षित रहा।

उड़ीसा के मंदिर प्रमुख रूप से भुवनेश्वर, पुरी तथ कोणार्क में हैं जिनका निर्माण आठवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच हुआ। भुवनेश्वर के मंदिर के मुख्य भाग के सम्मुख चौकोर कक्ष बनाया गया है। इसे जगमोहन (मुख्यमण्डप अथवा सभामण्डप) कहा जाता है। यहाँ उपासक एकत्रित होकर पूजा–अर्चना करते थे। जगमोहन का शीर्ष भाग पिरामिडाकार होता था। इनके भीतरी भाग सादे हैं किन्तु बाहरी भाग को अनेक प्रकार की प्रतिमाओं तथा अलंकरणों से सजाया गया है। गर्भगृह की संज्ञा देउल थी। बड़े मन्दिरों में जगमोहन के आगे एक या दो मण्डप और बनाये जाते थे जिन्हें नरमन्दिर तथा योगमन्दिर कहते थे। शैली की दृष्टि से उड़ीसा के मन्दिर तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं–

1. रेखा देउल– इसमें शिखर बनाये गये हैं।
2. पीढ़ा देउल– इसमें शिखर क्षितिजाकार पिरामिड प्रकार के हैं।
3. खाखर (खाखह)– इसमें गर्भगृह दीर्घाकार आयतनुमा होता है तथा छत गजपृष्ठाकार बनती है।

मन्दिरों में स्तम्भों का बहुत कम प्रयोग किया गया है। इनके स्थान पर लोहे की शहतीरों का प्रयोग मिलता है। यह एक आश्चर्यजनक तथा प्राविधिक आविष्कार था। मन्दिरों की भीतरी दीवारों पर खजुराहो के मन्दिरों जैसा अलंकरण प्राप्त नहीं होता है। भुवनेश्वर के मन्दिरों में लिंगराज मन्दिर

उड़ीसा शैली का सबसे अच्छा उदाहरण है। लिंगराज मंदिर के अतिरिक्त पुरी का जगन्नाथ मन्दिर तथा कोणार्क स्थित सूर्य–मन्दिर दोहरी दीवारों वाले प्रांगण में स्थित है। चारों दिशाओं में चार विशाल द्वार बने हैं। मन्दिर का मुख्य द्वार पूर्व की ओर स्थित है तथा उसके सामने स्तम्भ है। मंदिर की 400 x 350 फुट की परिधि में छोटे–छोटे अनेक मंदिर बने हैं। पुरी के जगन्नाथ मंदिर की गणना हिन्दू धर्म के पवित्रतम तीर्थों में होती है। गुजरात या राजस्थान के मंदिरों की बात की जाय तो प्रतिहार शासकों के निर्माण कार्यों का कुछ संकेत उनके लेखों में हुआ है। वाऊक की जोधपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है उसने वहाँ सिद्धेश्वर महोदव का मन्दिर बनवाया था।[2] इसी प्रकार मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति से सूचित होता है कि उसने अपने अन्तःपुर में भगवान विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाया था।[3]

प्रतिहार नरेशों ने मंदिर निर्माण में रूचि ली और गुप्तोत्तर काल (आठवीं शती में राजस्थान) वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा। मन्दिरों तथा भवनों के अवशेष जोधपुर के उत्तर पश्चिम में 56 किलोमीटर दूरी पर स्थित ओसिया नामक स्थान से प्राप्त होते है। प्राचीन मंदिरों में शिव, विष्णु, सूर्य, अर्धनारीश्वर, हरिहर, कृष्ण तथा महिषमर्दिनी दुर्गा के मन्दिर उल्लेखनीय है। इन पर गुप्त स्थापत्य कला का प्रभाव है।

राजस्थान की भूमि जैन धर्म से विशेष प्रभावित है, राजस्थानी, मारवाड़ी व्यापारी वर्ग जैन धर्म को विशेष रूप से मानने वाला है जैन संप्रदाय ने व्यापार को कृषि या अन्य आजीविका के साधन से बेहतर माना है। गुजरात और राजस्थान में जैन मंदिरों की अच्छी संख्या जहाँ जैन तीर्थयात्री आते हैं और पूजा अर्चना करते हैं। राजस्थान के जोधपुर के ओसिया ग्राम के भीतर तीर्थंकर महावीर का एक सुन्दर मन्दिर है जिसे वत्सराज के समय (770–800 ई0) में बनवाया गया था। यह परकोटे के भीतर स्थिर है। इसमें भव्य तोरण लगे हैं तथा स्तम्भों पर तीर्थंकरों की प्रतिमा खुदी है।

ओसिया के मन्दिर यद्यपि छोटे हैं, फिर भी उनकी बनावट की स्पष्टता एवं अनुपात में आदर्श है। ओसिया के मन्दिरों में सूर्य मंदिर सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस मन्दिर की प्रमुख विशेषता इसके अग्रभाग में है। यह भी पंचायतन प्रकार का है। मुख्य मन्दिर के चारों ओर छोटे मन्दिर हैं जिन्हें जोड़ते हुए अन्तराल बनाए गए हैं। शिखर का आकार तथा अलंकरण प्रशंसनीय है। यह ओसिया के मन्दिरों का सिरमौर माना जाता है तथा अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शिव को समर्पित था क्योंकि इसका ललाट बिम्ब उमामहेश्वर के रूप में है।

राजस्थान के मंदिरों में आबू पर्वत के जैन मंदिर के उल्लेखनीय हैं। राजस्थान प्रान्त में यह पर्वतीय नगर स्थित है। यह स्थान जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों के लिए जगप्रसिद्ध है। यहाँ दो प्रसिद्ध संगमरमर के मंदिर है जिनहें दिलवाड़ा मंदिर कहा जाता है। इनका निर्माण गुजरात के चौलुक्य

(सोलंकी) शासक भीमदेव प्रथम के सामन्त विमल ने करवाया था। प्रथम मन्दिर में आदिनाथ की मूर्ति है जिनकी आँखें हीरे की बनी हैं। प्रवेश द्वार पर स्तम्भ तथा दस गज–प्रतिमाएं है। मंदिर के गर्भगृह में ध्यानावस्थित जिन की प्रतिमा है। पाषाण की शिल्पकला का इतना उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता। दूसरा मंदिर जो तेजपाल कहा जाता है, इसी के पास स्थित है। यह भी अत्यन्त भव्य एवं सुन्दर है। पहाड़ी पर तीन अन्य जैन मंदिर भी बने हुए हैं। इस प्रकार आबू पर्वत जैन वास्तु एवं तक्षण कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

ऐलिफैन्टा :

मुम्बई जिसका नाम मुम्बा देवी के नाम पर मुम्बई किया गय से 7 मील उत्तर–पूर्व की दूरी पर एलिफैन्टा नामक छोटा–सा द्वीप स्थित है। सोलहवीं शती में मुम्बई (बम्बई) तट पर बसने वाले पुर्तगालियों ने यहां से प्राप्त हाथी की एक विशाल मूर्ति के कारण इस द्वीप का नाम एलिफैन्टा रख दिया।

एलिफैन्टा पहाड़ी से पांच गुफायें प्राप्त होती हैं जिनका समय पांचवी–छठी शताब्दी ईस्वी है। इनमें हिन्दू धर्म से सम्बन्धित मूर्तियां, विशेषकर शिव मूर्तियां प्राप्त होती हैं। इनमें त्रिमूर्तिशिव की प्रतिमा सबसे प्रसिद्ध है जिसमें इन्हें तीन विभिन्न रूपों में दिखाया गया है। महायोगी नटराज, भैरव, अर्धनारीश्वर। कैलाश–धारी, रावण आदि की मूर्तियां भी कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। एलिफैन्टा की शिल्पकारी अजन्ता और एलोरा के ही समान है।

अजन्ता :

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में अजन्ता की पहाड़ी है। औरंगाबाद के समीप जलगाँव नामक रेलवे स्टेशन से लगभग 37 मील की दूरी पर फरदापुर नामक ग्राम है। यहाँ से दो मील दक्षिण–पश्चिम की ओर अजन्ता नामक ग्राम बसा है। इसी के नाम पर पहाड़ी का नाम अजन्ता पड़ गया। यहाँ पर्वत को काटकर 29 गुफाओं का निर्माण किया गया जिनकी छतों दीवारों पर अत्यन्त सुन्दर चित्रकारियाँ मिलती हैं। अजन्ता में अब केवल 6 गुफाएं पाई जाती हैं जिनकी संख्या गुफा संख्या 9, 10,16, 17, 1–2 के चित्र अवशिष्ट हैं, अन्य नष्ट हो गये हैं। इनका समय ईसा–पूर्व प्रथम शती से लेकर सातवीं शती ईस्वी तक है। 9वीं–10वीं गुफाओं के चित्र सर्वप्राचीन है जिसका समय ईसा प्रथम शती है। इन गुफाओं के चित्रों में एक राजकीय जुलूस का चित्र प्रसिद्ध है। 16वीं–17वीं गुफाओं के चित्र गुप्तकाल के हैं और वे कला की दृष्टि से सर्वोत्तम है। मरणासन्न राजकुमारी (Dying Princess) तथा माता शिशु (Mother and Child) नामक चित्र अत्यन्त मनोहारी और प्रभावित करने वाला है।[4] पहली–दूसरी गुफाओं के चित्र सातवीं शती के हैं। यहाँ के नरेशों में चालुक्य नरेश

पुलकेशिन द्वितीय द्वारा फारसी दूत मण्डल का स्वागत करते एक चित्र भी है। इसके अतिरिक्त मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण भी है।

ऐलोरा :

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में स्थित एलोरा नामक स्थान अपने गुहा–मंदिरों (Cave Temples) के नाम से विख्यात है। यहाँ पहाड़ी को काटकर अनेक गुफायें बनाई गयी हैं जो बौद्ध, हिन्दू तथा जैन सम्प्रदायों से सम्बद्ध है। बौद्ध गुफाए 12 है जिनमें विश्वकर्मा का गुहा मन्दिर (संख्या 10) सबसे सुन्दर है। यह विशाल चैत्य के प्रकार का है जिसमें ऊँचे स्तम्भ बने है। स्तम्भों में अनेक बौनों की प्रतिमायें बनी हैं।[5]

ऐलोरा के सत्रह गुहा मन्दिर प्राप्त होते हैं जिनमें से अधिकतर राष्ट्रकूट शासकों के समय (7वीं–8वीं शताब्दी) में बने थे। इनमें 'कैलाश' मन्दिर सर्वप्रसिद्ध है। यह प्राचीन वास्तु एवं तक्षण कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। विशाल पहाड़ी को काटकर मनुष्यों, पशुओं, देवी–देवताओं की सुन्दर एवं बारीक मूर्तियाँ बनाई गई हैं इसका निर्माण कृष्ण प्रथम ने (750–793 ई0) में अत्यधिक धन व्यय करके बनवाया था।

यहाँ के अन्य मन्दिरों में रावण की खाब, देववाड़ा, दशावतार, लम्बेश्वर, रामेश्वर, नीलकण्ठ आदि उल्लेखनीय हैं। दशावतार मन्दिर का निर्माण आठवीं शती में दन्तिदुर्ग ने करवाया था। इसमें विष्णु के दस अवतारों की कथा मूर्तियों में अंकित की गयी है। स्थापत्य एवं तक्षण की दृष्टि से यह मन्दिर उत्कृष्ट है।

ऐलोरा से पाँच जैन मन्दिर भी मिलते हैं जिनका निर्माण 9वीं शताब्दी में हुआ था। इसमें इन्द्रसभा मन्दिर प्रमुख है जिसमें जैन तीर्थंकरों की कई सुन्दर मूर्तियाँ है। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की समाधिस्थ प्रतिमा मिलती है। मन्दिर के स्तम्भों एवं छतों पर अदभुत चित्रकारियाँ है। कलात्मक दृष्टि से एलोरा मंदिर कला के चर्मोत्कर्ष पर है।

तीर्थाटन के इतिहास में जाकर हमने अनेक दर्शनीय स्थलों मंदिरों मूर्तियों बौद्ध, जैन, हिन्दू धर्म के संगम स्थलों तीर्थों की चर्चा से स्पष्ट है कि हमारा देश विभिन्न धर्मों, जातियों, मतों, मान्यताओं, त्यौहारों का देश है। अगर इस चर्चा में सिक्खों और मुस्लिमों के पवित्र स्थानों की चर्चा न हुई तो यह चर्चा अधूरी रह जाएगी।

स्वर्ण मन्दिर :

पंजाब प्राचीन काल का सप्त सिन्धु प्रदेश सात नदियों का प्रदेश है महाजनपद काल का मद्र देश। सिक्ख मतलब शिष्य, सीखने वाला, सिक्ख धर्म के प्रतिपादक गुरुनानक जी थे। यह धर्म पंजाब

की धरती पर 15वीं शताब्दी में पनपा। इस धर्म के अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह जी थे। सिक्खों का सबसे पवित्र तीर्थ अमृतसर का स्वर्ण मंदिर है। अमृतसर का पवित्र सरोवर और मंदिर सिक्खों के चौथे गुरू रामदास ने बनवाया थौ इसी पवित्र सरोवर के नाम पर अमृतसर शहर का नाम पड़ा। स्वर्ण मंदिर के गुरूद्वारे में उपस्थित पवित्र गुरू ग्रन्थ साहब के दर्शन और सबद कीर्तन करने सिक्ख धर्मावलम्बी अमृतसर जाया करते हैं और पवित्र सरोवर में स्नान कर स्वर्ण मंदिर में गुरू ग्रन्थ साहिब का वाचन करते हैं।

इस्लाम को भारत में लाने का श्रेय अरबों को दिया जाता है। यह भारत में 11वीं–12वीं शताब्दी में आया। मुस्लिमों का प्रमुख तीर्थ स्थल मक्का और मदीना है जो अरब में है। भारत में सल्तनत और मुगल काल के दौरान अनेक बड़े सूफी सन्त हुए जिनकी मजारों और दरगाहों पर आज भी उनके मानने वाले जाते हैं और चादर चढ़ाते हैं। भारत में ऐसे प्रमुख दरगाह हैं–

कश्मीर का हजरत बल मस्जिद

मुम्बई में हाजीअली की दरगाह

पुरानी दिल्ली की जामा मस्जिद

अजमेर (राजस्थान) में अजमेर शरीफ इस्लाम का एक पवित्र स्थल है जिसके बारे में कहा जाता है यहाँ मांगी मन्नत खाली नहीं जाती। यह गरीब नवाज ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है जहाँ सभी धर्मों, मतों के लोग मन्नत मांगने आते हैं। शेख मोईनुद्दीन चिश्ती दुनिया की भौतिकता से दूर ही रहे गरीबों, मजदूरों पर इनकी विशेष कृपा दृष्टि रही है। मोईनुद्दीन का जन्म अफगानिस्तान के चिश्त प्रान्त में हुआ और वहाँ से आकर ये अजमेर में बस गए। ख्वाजा चिश्ती की दरगाह सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में सबसे बड़ी और पुरानी दरगाह है।

इतिहास के पन्ने पलटने पर सिन्धु घाटी सभ्यता के बाद वैदिक संस्कृति का उल्लेख आता है। किन्तु सिन्धु जैसी नगरीय सभ्यता के बाद आर्यों की ग्रामीण वैदिक संस्कृति का क्रम औचित्यपूर्ण नहीं लगता। सभ्यता कैसे चली आई इस पर इतिहासकारों का मतभेद बना हुआ है।[6]

वैदिक संस्कृति या आर्यों संस्कृति में ही 'जन' का उल्लेख आता है, 'राजन्' शब्द आता है, रथ दौड़ और वाजपेय यज्ञ की बात आती है। ऋग्वेद के वर्णन से प्रकट होता है कि आर्य अनेक जनों में विभक्त थे। 'जन' अपने को किसी एक पूर्वज की सन्तान मानते थे। प्रत्येक जन में अनेक कुटुम्ब होते थे। अतः एक ही जाति–पुरुष से उत्पन्न विभिन्न कुटुम्बों के समुदायों का नाम 'जन' था। प्रारम्भ में इन जनों का कोई एक निश्चित स्थायी स्थान न था। ये एक स्थान से दूसरे को घूमा करते थे। ऋग्वेद में जनों का उल्लेख आता है परन्तु जनपदों (स्थायी राज्यों) का नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय तक जनों ने अपने स्थायी राज्य स्थापित नहीं किए थे। वैदिक संहिताओं में भी जनपद

शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। सर्वप्रथम इसका प्रयोग ब्राह्मण ग्रन्थों में हुआ है। अतः यह निकर्ष निकलता है कि जनपदों का उदय ब्राह्मण काल से हुआ। महात्मा बुद्ध के समय तक आते–आते इन जनपदों का पूर्ण विकास हो गया था।[7]

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं कि ''लगभग एक सहस्त्र ईसवी पूर्व से पाँच सौ ईसवी पूर्व तक के युग को भारतीय इतिहास में जनपद या महाजनपद युग कहा जा सकता है। समस्त देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जनपदों का तांता फैल गया था। एक प्रकार से जनपद राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन की इकाई बन गए थे।

जिस प्रदेश में एक जन स्थायी रूप से बस गया वहीं जनपद (राज्य) हो गया। प्रारम्भ में जनपद में किसी एक वर्ग विशेष के मनुष्य ही रहते थे। अतः उनका जीवन एक ही जातीय, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परम्परा के ऊपर संगठित था। परन्तु कालान्तर में अन्य वर्गों और जातियों के लोग भी आकर उनके जनपदों में बसने लगे। इससे सांस्कृतिक आदान–प्रदान तो हुआ परन्तु बहुत समय तक राजसत्ता एकमात्र आदि जन के प्रतिनिधियों के हाथ में ही रही।

धीरे–धीरे जनपदों की संख्या कम होने लगी। छोटे जनपद बड़े जनपदों में निमज्जित होने लगे। इस भाँति देश में महाजनपद–काल का उदय हुआ। महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व भारतवर्ष 16 महाजनपदों में विभक्त था।[8] बौद्ध ग्रन्थ अगुत्तर निकाय में इनके नाम मिलते हैं–

1. अंग
2. मगध
3. काशी
4. कोशल
5. वज्जि
6. मल्ल
7. चेदि
8. वत्स
9. कुरू
10. पंचाल
11. मत्स्य
12. सूरसेन
13. अस्सक

14. अवन्ति
15. गान्धार
16. कम्बोज

जन, जनपद और महाजनपद का सफर तय करके बड़े और शक्तिशाली राज्यों की स्थापना हुई। इन तमाम राज्यों में सबसे शक्तिशाली राज्य मगध– वर्तमान बिहार के पटना और गया जिले इस राज्य के अन्तर्गत थे।[9] प्रारम्भ में इसकी राजधानी गिरिब्रज थी। महात्मा बुद्ध के काल के पूर्व बृहद्रथ और जरासंध मगध के दो प्रसिद्ध राजा थे।

महाजनपद काल का मगध यानी उत्तरी भारत के पूर्वी गांगेय मैदान भौगोलिक दृष्टि से भारत की सबसे उपजाऊ भूमि थी। ऐतिहासिक दृष्टि से भी सबसे उपजाऊ (उर्वर भूमि) जिसका सीधा सम्बन्ध भगवान बुद्ध से है।

यहाँ तक की बिहार (मगध) ने अपना नाम भी बौद्ध भिक्षुओं के लिए बनवाए गए विहार से प्राप्त किया है। विहार वह स्थान था जहाँ बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। आधुनिक बिहार राज्य के गया तथा पटना जिले आज भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय के बौद्ध सर्किट का अहम हिस्सा है। गया वह स्थान जहाँ के उरुवेला ग्राम के पीपल वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध ने साधना की और वे सिद्धार्थ से बुद्ध बने, ज्ञान प्राप्त किया। वह पीपल वृक्ष बौद्ध वृक्ष कहलाया जो बौद्ध धर्मावलंबियों का प्रमुख तीर्थ स्थल है। जहाँ न केवल देश से बल्कि विदेशों से भी बौद्ध धर्मावलंबी और सैलानी आते हैं। गया में सम्राट अशोक द्वारा तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में निर्मित महाबोधि मंदिर भी एक दर्शनीय स्थल है। इस मंदिर का जीर्णोद्धार सातवीं शताब्दी में बंगाल के पाल शासकों ने किया था। चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने भी इसे देखा और अपने ग्रंथों में इसका उल्लेख किया है। आज यह मंदिर UNESCO यूनेस्कों के विश्व विरासत सूची में दर्ज है।

बिहार का गया वह पवित्र स्थान है जो जितना बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए महत्वपूर्ण है उतना ही हिन्दू धर्मावलंबियों के लिए भी पूजनीय है। एक ओर जहाँ बुद्ध ने यहाँ ज्ञान प्राप्त किया था तो दूसरी ओर हिन्दू यहाँ अपने पितरों (Fore Fathers) के अर्पण–तर्पण के लिए यहाँ आते हैं। यहीं पर फाल्गू नदी के किनारे विष्णुपाद मंदिर भी है जो बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं को आकर्षित करता है। महाजनपद काल का एक और शक्तिशाली राज्य काशी जिसकी राजधानी वाराणसी नगरी थी जो वरुणा और असी नदियों के संगम पर बसी थी। गुत्तिल जातक के अनुसार यह नगरी 12 योजन विस्तृत थी और भारतवर्ष की सर्वप्रधान नगरी थी। महावग्ग में काशी राज्य की शक्ति और समृद्धि का वर्णन मिलता है। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन काशी के राजा थे। काशी का सीधा सम्बन्ध भगवान शिव से है। कथाओं में वर्णित है कि काशी शिव के त्रिशूल पर टिका है जो धरती से कुछ ऊपर है। इसे अविनाशी, शहर भगवान का शहर इत्यादि नामों से जाना जाता है। इसका

इतिहास बहुत पुराना है इसे विश्व का प्राचीनतम नगर माना जाता है। पूरी दुनिया से लोग वाराणसी घूमने आते हैं, समस्त भारत से श्रद्धालु यहाँ आते हैं। सैलानियों का वर्ष भर ताँता लगा ही रहता है। शहर का प्रमुख आकर्षण काशी विश्वनाथ का मन्दिर, अन्नपूर्णा माता का मन्दिर, कालभैरव का मंदिर है जिन्हें बनारस का कोतवाल कहा जाता है। वाराणसी के प्राचीनतम घाटों के कारण इसे घाटों का भी शहर कहा जाता है। यहाँ के कुछ प्रमुख घाट हैं– अस्सी घाट, तुलसी घाट, शिवाला घाट, हनुमान घाट, प्राचीन हनुमान घाट, कर्नाटक घाट, हरिश्चन्द्र घाट, दशाश्वमेध घाट इत्यादि।

आज काशी में पर्यटन अपने चर्मोत्कर्ष पर यूँ ही नहीं पहुँचा है इसके पीछे प्रमुख कारक इस शहर की प्राचीनता है, इसके प्राचीन मंदिर, प्राचीन घाट हैं। काशी को यदि भारतीय आध्यात्म जगत की राजधानी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह भारतीय आध्यात्म, दर्शन कला का जीता जागता उदाहरण है। बड़े–बड़े कलाकार और कलाओं के घराने यहाँ हैं, गुदई महराज, रामजीमिश्र आदि बनारस घराने के तबला वादक है। स्व0 पंडित रविशंकर, राजभाव सिंह, वीरेन्द्र कुमार मिश्र बनारस घराने के सितार वादक रहे हैं। राजन–साजन मिश्र, छन्नूलाल मिश्र, शिव–पशुपति मिश्र आदि बनारस घराने के ध्रुपद गायक रहे हैं।

इसी काशी से 10 किमी0 की दूरी पर स्थित है सारनाथ जो बोध गया के बाद बौद्ध धर्मावलंबियों का प्रमुख तीर्थ स्थल है। सारनाथ यानी वह स्थान जहाँ भगवान बुद्ध ने अपना पहला उपदेश देकर धर्म चक्र को प्रवर्तित किया। परवर्ती काल में सम्राट अशोक ने यहा अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया। 640 ई0 के आसपास सारनाथ का स्वर्ण काल था। सारनाथ बौद्धधर्म के पुरावशेषों का खजाना है यहाँ बुद्ध से संबंधित एक संग्रहालय भी है जहाँ अशोक के काल से लेकर 1200 ई0 तक के पुरावशेष मिलते हैं।

यहाँ सम्राट अशोक के द्वारा बनवाया गया चौखण्डी का स्तूप भी है जो वास्तव में ईटों का बना हआ है। दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण स्तूप धमेख स्तूप है जिसकी ऊंचाई 110 फिट है और जो ठीक उसी स्थान पर निर्मित है जहाँ से भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। वर्तमान धमेख स्तूप 50 ई0 में बना था और उसके बाद अब तक कई बार बन चुका है समय–समय पर इसकी मरम्मत का काम किया गया है। स्तूप पर ज्यामीतिय डिजाइन की पुष्पाकृतियाँ गुप्त काल की बनी हुई है। यहाँ खुदाई के दौरान ईटों का काम भी मिलता है, ईटों की दीवार मिली है जो कि 200 ई0पू0 में निर्मित हुई है। यही पर एक स्तूप के पुरावशेष के पास मौर्य युग का शानदार अशोक स्तम्भ खड़ा है। इस स्तंभ के शीर्ष पर एक चौकी पर चार सिंह चारों दिशाओं की ओर मुख किए हुए पीठ से पीठ सटाए बैठे हैं। यह अशोक स्तम्भ अब सारनाथ के संग्रहालय में पर्यटकों का प्रमुख आकर्षण बना हुआ है। जो आज भारत सरकार का प्रतीक चिह्न है।

अगर 16 महाजनपदों में से एक महाजनपद काशी प्राचीन काल से ही हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ स्थल रहा है जहाँ श्रद्धालु तीर्थाटन के लिए आते थे तो काशी से सटे सारनाथ में बौद्ध धर्मावलंबी तीर्थाटन के लिए पूजा अर्चना के लिए ही आते थे। यहीं काशी से 67 कि0मी0 की दूरी पर बसा मिर्जापुर नगर हिन्दुओं के लिए तीर्थाटन का एका और स्थल है जहाँ विन्ध्याचल पर्वत पर माता विंध्यवासिनी देवी, अष्टभुजी देवी और काली खोह के मंदिर प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल तीर्थाटन या भ्रमण आज आधुनिक युग में पर्यटन का रूप ले चुका है, यह धार्मिक पर्यटन का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। पर्यटन अपने आप में एक वृहद विचार है। पर्यटन में वह सब कुछ है जो हमारा मनोरंजन कर सके, हमें स्फूर्ति दे, हमें हमारे रोजमर्रा के दैनिक जीवन से अलग कुछ नए अनोखे एहसास करा सकें। पर्यटन फुरसत के क्षणों का आनन्द उठाने के उद्देश्य से किया जाता है। विश्व पर्यटन संगठन (World Tourism Organization) के अनुसार पर्यटक वे लोग है जो यात्रा करके अपने सामान्य वातावरण से बाहर के स्थानों में रहने जाते हैं। यह दौरा ज्यादा से ज्यादा एक साल के लिए मनोरंजन व्यापार, सांस्कृतिक ज्ञान अर्जित करने, अन्य उद्देश्यों से किया जाता है, यह उस स्थान पर किसी खास क्रिया से सम्बन्धित नहीं होती है। चूँकि पर्यटन एक विस्तृत संकल्पना है और इसका दायरा व्यापक है इसके अन्तर्गत अपने देश या संसार के किसी भी देश की विभिन्न चीजें इसके उत्पाद हैं, जैसे उस देश की स्थापत्य (महल, किले, मीनारे, मकबरे, मंदिर); कला (संगीत, वादन, चित्रकारी, मूर्तिकला, पच्चीकारी, कसीदाकारी इत्यादि); संस्कृति (शादी ब्याह, उत्सव, खान–पान, रहन–सहन, सम्मेलन, महोत्सव)। यदि इसे बाजार के शब्दों में समझे और एक विदेशी पर्यटन को ग्रहक माने तो वह हमारे देश से विभिन्न तरह के अनुभव खरीद कर ले जाता है जिनसे उसका भरपूर मनोरंजन होता है। वह पर्यटक खरीद कर ले जाता है ग्वालियर के विशाल काय किले को भीतर और बाहर से देखने की शानदार अनुभूति, राजस्थान के रेगिस्तान में ऊंट की सवारी करने का लुत्फ और राजस्थान के काल बेलिया नृत्य की मनोरम छटा, उत्तर प्रदेश के कत्थक नृत्य का आनन्द और केरल के डोसे का स्वाद तथा गोवा के समुद्र तट के लहरों की मौज। चूँकि भारत विशाल देश है प्राकृतिक सम्पदा से समृद्ध है तो पर्यटकों के लिए यहाँ बहुत कुछ है। मुम्बई जैसे आधुनिक शहर, हिमालय की चोटियों की ऊंचाई, मध्यप्रदेश के जंगल और बाघ, राजस्थान के राजपूताने की झलकी दिखाते किले।

भारत का आध्यात्मिक पक्ष भी बहुत मजबूत रहा है। यहाँ का दर्शन समृद्ध रहा है, यहाँ का योग अब जग प्रसिद्ध है। काशी और प्रयाग जैसी धर्म की नगरी भी यहीं है। काशी प्राचीन काल से तीर्थाटन का केन्द्र रहा है वही प्रयाग की गिनती तीर्थराज के तौर पर हुई। यहाँ संगम में स्नान कर भक्त स्वयं को मोक्ष का उत्तराधिकारी समझने लगता है। प्रयाग में लगने वाले हर छठें वर्ष अर्द्ध कुंभ और हर बारहवें वर्ष लगने वाले महाकुम्भ के मेले को देखने पूरी दुनिया से पर्यटक आते हैं और सम्पूर्ण भारत से तीर्थ धाम करने वाले श्रद्धालु आकर यहाँ कल्पवास करते हैं। यदि हम प्रयाग या

मध्यकाल के इलाहाबाद को वापस 16 महाजनपद काल में ले जाए तो इसका सम्बंध बुद्ध से भी निकलेगा। महाजनपद काल में प्रयाग–बघेलखण्ड क्षेत्र में स्थित था। इसमें मूल रूप से उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद मिर्जापुर और बांदा जिले का कुछ भाग सम्मिलित था। गंगा नदी के दक्षिण की ओर का वह प्रदेश जो यमुना नदी के तट पर स्थित था, वत्स–राज्य के अन्तर्गत आता था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी जो इलाहाबाद से 30 मील दूरी पर है।[7] दीघ निकाय में कौशाम्बी की गणना बुद्ध युगीन भारत के छह महानगरों में की गई है। ओल्डेनबर्ग महोदय ने ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित वंशस को वंश अथवा वत्स बताया है, परन्तु यह समीकरण संदिग्ध है। पुराणों में वत्स राज्य का वर्णन है। गंगा की भयानक बाढ़ से जब हस्तिनापुर नष्ट हो गया तो जनमेजय के प्रपौत्र निचक्षु ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था। स्वपनवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण नामक नाटकों में वत्सराज के वर्णन का उल्लेख है।

वत्सराज उदयन की राजधानी कौशाम्बी नगर में जाकर बुद्ध ने कई बार धर्मोपदेश किया तथा लोगों को अपना शिष्ट बनाया था। यहाँ अनेक विहार थे जिनमें सर्वप्रमुख था घोषिताराम।[10] इसका निर्माण श्रेष्ठि घोषित ने करवाया था। इस विहार के निकट ही अशोक का स्तूप था। बौद्ध धर्म को केन्द्र होने के साथ–साथ कौशाम्बी एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर भी था, जहाँ अनेक धनी व्यापारी निवास करते थे। मौर्य शासक अशोक ने यहाँ अपने स्तम्भ लेख उत्कीर्ण करवाये थे। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र का महत्व बढ़ने से कौशाम्बी का गौरव घट गया। गुप्त युग तक इस नगर का अस्तित्व सुरक्षित रहा। सातवीं शती में जब ह्वेनसांग ने भारत की यात्रा की तब उसने इस नगर को उजड़ा हुआ पाया था। घोषिताराम की खुदाई से एक विहार मिला है जिसके चारों ओर ईट की दीवारें बनी हुई है। विभिन्न स्तरों से सूचित होता है कि इस विहार का निर्माण कई बार किया गया। विहार के प्रांगण से एक बड़े तथा तीन छोटे स्तूपों के अवशेष मिलते हैं। इस विहार का निर्माण ई0पू0 पाँचवी शताब्दी में हुआ था। बिहार से पाषण तथा मिट्टी की मूर्तियां, सिक्के तथा कुछ लेख मिलते हैं। इसी क्षेत्र से हूणनरेश तोरमाण की मुहर मिली है। इससे सूचित है कि हूणों का कौशाम्बी के ऊपर आक्रमण हुआ तथा उन्होंने यहाँ बड़े पैमाने पर आगजनी लूटपाट की। यहाँ से मिली पत्थर की मूर्तियों पर बुद्ध का अंकन प्रतीकों में किया गया है। इसका समय मौर्य काल से गुप्त काल तक निर्धारित किया गया है, पाषाण मूर्तियाँ ई0पू0 200 से 500–600 ई0 तक की हैं। इनसे ज्ञात होता है कि भरहुत तथा साँची के समान कौशाम्बी भी कला का एक प्रमुख केन्द्र था। यहाँ की प्रसिद्ध मूर्तियों में कुबेर, हारीति तथा गजलक्ष्मी की मूतियाँ उत्कृष्ट हैं। जी0आर0 शर्मा यहाँ से मिले हुए सिक्कों को आहत सिक्कों से भी प्राचीनतर मानते हैं तथा इनकी तिथि ईसा पूर्व नवीं शताब्दी निर्धारित करते है। इन तमाम प्रमाणों से सिद्ध होता है कि बुद्ध के काल में घोषिताराम विहार एक प्रमुख विहार था। वत्सराज उदयन, बिम्बिसार तथा अजातशत्रु बुद्ध के समकालीन थे तथा बिम्बिसार और बुद्ध के सम्बंध तो मित्रवत् थे। इन सम्राटों का सहयोग सदैव बुद्ध को प्राप्त होता रहा है। बुद्ध अपने जीवन काल में धम्म और संघ

के प्रचार–प्रसार हेतु विश्व भ्रमणशील रहे वे विभिन्न स्थानों पर धर्म का प्रचार–प्रसार करते थे तथा बरसात के समय जिन आश्रमों में विश्राम करते थे आज वे सारे स्थल बौद्ध धर्मावलम्बियों के तीर्थ है। उदाहरण के लिए–

लुम्बिनी

श्रावस्ती

कुशीनगर

सारनाथ

वाराणसी (काशी)

बोध गया

राजगीर

नालंदा

बुद्ध से सम्बंधित ये ऐतिहासिक स्थल आज भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय द्वारा बुद्धिस्ट सर्किट के रूप में विकसित कर दिया गया है। भारत सरकार द्वारा विशेष रेल जिसका नाम परिनिर्वाण एक्सप्रेस है, के द्वारा इन सभी स्थानों की यात्रा करायी जाती है। आज बौद्ध तीर्थ स्थलों में पर्यटन इतना आसान हो गया है कि घर बैठे ई टिकट और रहने खाने की व्यवस्था इन्टरनेट और एटीएम कार्ड से हो जा रही है।

प्राचीन काल का तीर्थाटन आज पर्यटन में समाहित हो चुका है। पहले अनेक कष्ट उठा महीनों यात्रा करके मनुष्य अपने मनचाहे तीर्थ या धाम पहुँचता था धर्मशालाओं और सरायों में ठहरता था। आज मनुष्य द्रुत गति के साधनों ट्रेन, बस, हवाई जहाज द्वारा घंटों में अपने मनचाही जगह पहुँच जाता है। धर्मशालाओं सरायों की जगह पंच सितारा होटलों ने ले ली है। शुद्ध जल, शुद्ध भोजन, साफ सुथरी जगह आवास आसानी से उपलब्ध हो जाता है। हमारा पर्यटन उद्योग भी इतिहास से बहुत कुछ पाता है, लोककथाएं, लोकगीत, लोकनृत्य, धार्मिक पौराणिक ग्रन्थ, ऐतिहासिक किले, प्राचीन मंदिर, प्राचीन पवित्र नदिया, राजेमहाराजे, किले, हस्तकला सामग्री, पहनावा, त्यौहार, खानपान, ज्ञान–विज्ञान और दर्शन ये सब पर्यटन उत्पाद हैं स्पष्ट है कि पर्यटन इतिहास का ऋणी है।

पर्यटन विशेषज्ञ प्रो0 मनोज दीक्षित का मानना है चन्दन की लकड़ी भारत में पांई जाती तो मैसूर का बना चन्दन का साबुन पर्यटन उत्पाद है। इस उत्पाद को शहर का नाम दे सकते है। मैसूर संडल सोप दिल्ली, आगरा, जयपुर, राजस्थान का प्रसिद्ध संगमरमर का काम मूर्तियाँ खिलौने। तमिलनाडु का समुद्री सीपी का काम, सेवा नाम की (NGO) संस्था भी पर्यटन उत्पाद हो सकता है।

सितार वादक पंडित रविशंकर भी उत्पाद है। खजुराहो का नृत्य महोत्सव इस प्रकार केरल का हाथी परेड भी पर्यटन उत्पाद है। स्पष्ट है कि पर्यटन के लगभग सभी उत्पाद देश की कला, संस्कृति, इतिहास से प्राप्त किए गए है।

यहाँ इतिहास का प्रमुख स्थान है हम अपने तीर्थों, ऋषि मनीषियों, महात्माओं जैसे बुद्ध, महावीर, गुरूनानक की दी हुई धरोहर और इतिहास पर गर्व कर सकते है, आज ये पर्यटन का अहम हिस्सा है शायद इनके बिना पर्यटन सम्भव ही नहीं है या अधूरा सा है।

संदर्भ :

1. नागरं तु चतुस्रंस्यात् वृत्तं स्यात् वेसरम्। द्रविड़ च अण्टस्रतुं..... – सुप्रभेदागम्
2. पुण्कारिणी कारिता सेनत्रेतो तीर्थेच पत्तनम्। सिद्धेश्वरी महादेवः कारितस्तुंग मन्दिरं।।
– जोधपुर प्रशस्ति
3. राजातेन स्व देवीनां यशः पुण्य–अभिवृद्वये। अन्तः पुर–पुरं नाम्ना व्यवधयि नरक–द्विपः।।
– ग्वालियर प्रशस्ति
4. ग्रिफिथ, बर्गेस और फर्गुसन ने इस चित्र की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। यू0एन0 राय, गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद, 1971, पृ0 375
5. वही
6. जी0सी0 पाण्डे, वैदिक संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–2001
7. वही
8. एच0सी0 रायचौधरी, पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐंश्येण्ट इण्डिया
9. वही
10. इपिग्राफिया इण्डिका